गुरुदेव के दिव्यदूत : स्वामी चिदानन्द जी

डॉ. शरच्चन्द्र बेहेरा

अनुवादक

श्री स्वामी अर्पणानन्द जी

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगरह्नह्न२४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१४

(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—31

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगरह्वह्व२४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

गुरुदेव के साथ युगान्तरकारी यात्रा

''ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तोमामुपासते।

और (कोई-कोई) दूसरे लोग ज्ञान-यज्ञ के द्वारा भी पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं'' (गीता :९-१५)।

गुरुदेव के देवदूत के रूप में स्वामी चिदानन्द जी इस महान् देश में सन् १९४९ से ही अविरत क्रियाशील रहे हैं। गुरुदेव ने उन्हें दिव्य जीवन संघ की बिहार प्रादेशिक शाखा के उद्घाटन-समारोह में अपना प्रतिनिधित्व करने को पटना जाने के लिए कहा था। उनकी संवेदनशील मुखाकृति, सम्मोहक मुस्कान, दयार्द्र वाणी, मुख का आभामण्डल तथा तेजस्वी वक्तृता ने बिहार के श्रोताओं को पुलकित कर दिया। उन्होंने इन्हें प्रथम श्रेणी का सन्त पाया। वे इस उदीयमान आध्यात्मिक प्रकाश-पुंज के सम्मुख सहज ही नत-मस्तक हो गये। इनका वहाँ ऐसा तात्कालिक तथा सशक्त प्रभाव पड़ा कि इनके आश्रम में वापस आने पर स्वयं गुरुदेव ने इन्हें बधाई दी। गुरुदेव ने इस निरतिशय प्रतिष्ठित तथा परम विनीत शिष्य का अनेकविध रूप से परीक्षण कर तथा लोक-संग्रह के लिए उसकी प्रतिभा को जान लिया।

गुरुदेव को स्वयं इस समय यात्रा करना अभिमत न था। उन्होंने चौदह वर्ष अथवा इससे अधिक समय की दीर्घावधि के अधिकांश काल में अपने को आनन्द-कुटीर तक ही परिरुद्ध रखा। उनके अनेक भक्त अखिल भारत-यात्रा के लिए उनसे बारम्बार अनुनय करते रहे; किन्तु गुरुदेव ने निर्णय लेने को स्थगित ही रखा। अन्त में १९५० में उन्होंने अपना

एकान्तवास समाप्त कर भारतवर्ष के कोने-कोने में प्रभु की सन्तान से मिलने के लिए बाहर जाने का निश्चय कर लिया।

इस भाँति जब वह ९ सितम्बर १९५० को आनन्द-कुटीर से बाहर निकले तो उन्होंने अपनी युगान्तरकारी यात्रा के लिए स्वामी चिदानन्द को प्रमुख माध्यम (सन्धान-प्रस्तर) के रूप में चुना। स्वामी परमानन्द तथा स्वामी वेंकटेशानन्द जैसे अन्य प्रबल समर्थक इस यात्रा के संघटनात्मक वास्तुकार थे तथा उन्होंने श्रेष्ठता से सेवा की; किन्तु सेवा-यात्रा में शुरू से अन्त तक स्वामी चिदानन्द ने ही गुरुदेव की वास्तविक प्रतिकृति के रूप में कार्य किया। उसके पश्चात् भी उन्होंने इस पुण्य भूमि के कोने-कोने तक दिव्य जीवन का सन्देश पहुँचाते हुए समूचे भारतवर्ष की अनेक बार यात्राएँ की हैं; किन्तु गुरुदेव के साथ तथा उनकी सेवा में सन् १९५० की यह अखिल भारत यात्रा वास्तव में सर्वाधिक स्मरणीय थी। वह गुरुदेव के साथ देश के असंख्य जिज्ञासुओं के सम्मुख न केवल गुरुदेव के प्रतिनिधि के रूप में अपितु एक परमोत्कृष्ट कोटि के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के रूप में अपने पूर्ण वैयक्तिक अधिकार के आधार पर उपस्थित हुए। इनसे अपने सरल किन्तु मर्मस्पर्शी व्याख्यानों में वेदान्तिक तथ्यों के स्पष्टीकरण द्वारा गुरुदेव के सम्भाषणों को सम्पूरित करने तथा वैयक्तिक प्रदर्शन द्वारा योगासनों के अभ्यास के लिए जनता को प्रेरित करने के लिए अनुरोध किया जाता था। यह दीर्घकाल तक बहुसंख्य श्रोतागणों के साथ इनका प्रथम समागम था; किन्तु अपने गुरु के पास रहने के कारण, भीड़ से चाहे वह गुणात्मक अथवा परिमाणात्मक रूप से कुछ भी हो, इन्हें एक क्षण भी घबराहट नहीं हुई।

वह शिवानन्द मिशन के मूल्यवान् कोहनूर की भाँति चमकते रहे तथा उन्होंने सहस्रों मरणशील प्राणियों को आध्यात्मिक जीवन के प्रवेश-द्वार की

ओर आकर्षित किया। अगाध गुरुभक्ति तथा अन्त:प्रज्ञा से परिपूर्ण वह जहाँ-कहीं भी गये वहाँ के लोगों पर उन्होंने अपना अमिट प्रभाव छोड़ा। इस युगान्तरकारी यात्रा के श्रद्धेय स्वामी परमानन्द जी महापराक्रमी आयोजक थे, स्वामी वेंकटेशानन्द यथार्थ प्रतिवेदक थे, नारायण स्वामी तथा स्वामी पूर्णबोधेन्द्र आडम्बर-रहित सहायक थे तथा स्वामी शाश्वतानन्द गुरुदेव की वस्तुत: छाया अथवा उनके अंगरक्षक थे। स्वामी गोविन्दानन्द तथा स्वामी पुरुषोत्तमानन्द ने गुरुदेव को शारीरिक सुख-सुविधा प्राप्त कराने के लिए बड़ी ही सावधानी से अथक कार्य किया। स्वामी ओंकारानन्द आध्यात्मिक साहित्य वितरण के कार्यभारी थे। स्वामी सत्यानन्द हिन्दी-भाषी श्रोताओं में भाषण देते तथा शिवानन्द-साहित्य के विक्रय में स्वामी दयानन्द की सहायता करते थे। पद्मनाभन ने एक छायाचित्रकार के रूप में अपनी सक्षम सेवा से यात्रा को अमर बना दिया। कुछ अन्य लोगों ने भी एकाधिक रूपों में सहायता की; किन्तु **इस युगान्तरकारी यात्रा में स्वामी चिदानन्द का अपना विशिष्ट स्थान था।** इस भागवत पुरुष का ऐसा अद्वितीय प्रभाव पड़ा कि स्वयं गुरुदेव ने लोगों को इनकी ओर बारम्बार इंगित कर इन्हें अपने सर्वोत्कृष्ट आदर्श के रूप में स्वीकार करने को प्रोत्साहित किया। गुरुदेव ने जिन आदर्शों का उपदेश दिया है, स्वामी चिदानन्द उन सबके आज भी महत्तम जीवन्त आदर्श बने हुए हैं।

गुरुदेव सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् के उनके प्रख्यात मन्दिर में भगवान् शिव का अभिषेक करने के लिए गंगोत्तरी से पावनी गंगा का पवित्र जल अपने साथ ले गये थे। **फैजाबाद** में जिज्ञासुओं की एक सभा को सम्बोधित करते हुए स्वामी चिदानन्द ने इसका उल्लेख किया और इसका आन्तरिक

अर्थ बतलाया। उन्होंने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि गुरुदेव रामेश्वरम् में अर्पित करने के लिए गंगा के स्रोत से गंगा-जल ले जा रहे हैं; किन्तु वह प्रतीक रूप में समूचे देश को आप्लावित करने के लिए स्रोत से, अपने आत्मज्ञान से ज्ञान-गंगा का जल लिये जा रहे हैं। गुरुदेव की यह तीर्थयात्रा निश्चय ही भारतवर्ष तथा श्रीलंका के लोगों के लिए निस्सन्देह सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक सेवा थी।

गुरुदेव तथा स्वामी जीह्नदोनों का दृष्टिकोण समान था। दोनों ही इस महान् राष्ट्र की प्राचीन आध्यात्मिक विद्या छात्रों तक पहुँचाने की अविलम्ब आवश्यकता पर बल देते थे तथा दोनों ने ही इस यात्राभर अन्य कार्यक्रमों के मूल्य पर भी अपने प्रबोधक भाषणों से छात्रों को लाभान्वित किया। फैजाबाद में स्वामी जी ने गुरुदेव के भाषण से पूर्व अपना प्रारम्भिक भाषण दिया। यहाँ सच्चरित्र-निर्माण, ब्रह्मचर्य-पालन तथा इस पुण्य भूमि के भाग्यशाली नागरिक होने के अभिमान के पोषण पर उनके हिन्दी के बोधप्रद भाषण ने आश्चर्यजनक अनुक्रिया उत्पन्न की और लखनऊ तथा फैजाबाद-मण्डल के तत्कालीन आयुक्त श्री एस. एल. धर, आई. सी. एस. ने, जिन्होंने इस सभा की अध्यक्षता की, इस युवक संन्यासी ने जनता पर जो चौंका देने वाला प्रभाव डाला, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस भाँति प्रख्यात वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्वामी जी ने छात्र-समुदाय को प्राचीन भारतीय आदर्शों को आत्मसात् करने की प्रेरणा दी। उनके विचारोत्तेजक भाषण ने प्रवर प्राध्यापकों को भी झकझोर दिया।

पटना में ही भारतवासियों को स्वामी जी के गुरुदेव के भावी उत्तराधिकारी तथा गम्भीर ज्ञान-सम्पन्न एक उन्नत कोटि के सन्त होने का पता चल गया। यहाँ स्थानीय रोटरी क्लब में गुरुदेव ने 'विश्व-बन्धुत्व' पर

प्रवचन किया। भाषण के अन्त में, जैसा कि प्राय: होता है, प्रश्नोत्तर का समय था। ऐसा हुआ कि इस अवसर पर गुरुदेव ने स्वामी जी को अपनी ओर से रोटरी क्लब के सदस्यों के प्रश्नों के उत्तर देने का निर्देश दिया। इसके द्वारा उन्होंने स्वामी जी के साथ अपनी आत्मैक्यता का भाव व्यक्त किया। इस सुयोग ने जिज्ञासुओं को यह प्रकट कर दिया कि स्वामी चिदानन्द शुद्ध संक्षेत्र (प्रिज़्म) हैं जो पिपासु साधकों के पथ को प्रकाशित करने के लिए गुरुदेव के विचारों को परावर्तित करते हैं। क्लब के आधा दर्जन सदस्य स्वामी जी के सम्मुख विविध विषयों को समाविष्ट करने वाली बहुत ही जटिल, दार्शनिक तथा नैतिक समस्याएँ प्रस्तुत करने के लिए एक-एक कर उठे। स्वामी जी ने उनका ऐसे विश्वस्त ढंग से उत्तर दिया कि व्यक्ति को यह सन्देह हो सकता है कि उन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए वह वहाँ तैयार हो कर गये थे। श्रोताओं को यह तथ्य सहसा ज्ञात हो गया कि उच्च आध्यात्मिक क्षेत्रों में प्रवेश के बिना सुशिक्षित लोगों के प्रवर वर्ग, जिसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री कमलकान्त वर्मा जैसे प्रतिष्ठित लोगों का समावेश था, के सम्मुख तत्काल ऐसे विवेकपूर्ण तथा तर्कसंगत आध्यात्मिक स्पष्टीकरण दे पाना एक नवयुवक संन्यासी के लिए सम्भव नहीं है। उनके उत्तरों में अपना ही एक विशिष्ट सौन्दर्य था। वे शास्त्रों के प्रमाण, प्रतिभाशाली मस्तिष्क की गहरी पैठ, विश्लेषणात्मक प्रस्तुतीकरण तथा दिन-प्रति-दिन के सूक्ष्म निरीक्षण को प्रकट करते थे। बैठक के अन्त में जिज्ञासुओं ने स्वामी जी की जागरूकता, समझ तथा विश्वासोत्पादक शक्ति के प्रति अपने समादर-भाव व्यक्त किये। अनुक्रिया का उत्कृष्ट सार कदाचित् आरक्षी महानिरीक्षक श्री ए. के. सिन्हा की केवल एक टिप्पणी उद्धृत कर प्रस्तुत किया जा सकता है। सभा की समाप्ति पर वह आगे बढ़ कर स्वामी जी तक आये और अपने

भावोद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा, ''स्वामी जी! मैं आप पर गर्व अनुभव करता हूँ।'' इस भाँति इस युवा अख्यात संन्यासी ने अपनी तीस वर्ष की आयु में ऐसे प्रौढ़ तथा विवेकी व्यक्तियों के समूह का प्रेम तथा प्रशंसा प्राप्त की जो सहज ही (वीरोचित पूजा के) भावावेश के वशवर्ती होने वाले नहीं थे।

यात्रा-काल में स्वामी जी कार्यक्रमों को प्राय: अपने मनोहारी 'जय-गणेश' कीर्तन से प्रारम्भ किया करते थे। यदि वहाँ हिन्दी-भाषी श्रोता होते तो वह गुरुदेव के अँगरेजी भाषण का अभिप्राय हिन्दी में समझाने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करते थे और श्रोताओं के हृदय को आकर्षित कर लेते थे जैसा कि उन्होंने गंगामहल, गया तथा अन्य अनेक स्थानों में किया। इससे पूर्व निर्दिष्ट किया जा चुका है कि स्वयं गुरुदेव स्वामी जी की असाधारण विनम्रता, प्राणिमात्र की निस्स्वार्थ सेवा तथा निरन्तर दिव्य चेतना से इतना अधिक प्रभावित थे कि वह जहाँ भी गये, वहाँ सदा ही उन्होंने अपने इस समर्पित शिष्य के आध्यात्मिक गुणों का उल्लेख कर उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। चेन्नै के राजभवन में इण्टरनेशनल फेलोशिप (अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री संघ) को सम्बोधित करते समय उन्होंने एक अनुपम कर्मयोगी के रूप में स्वामी चिदानन्द जी का उदाहरण उद्‌धृत किया और कहा कि नारायण-भाव से की गयी उनकी सेवा उनसे कहीं अधिक आयु के साधकों के लिए भी एक स्पर्धा-योग्य आदर्श है। उन्होंने चिदानन्द जी द्वारा एक रोगी कुत्ते के उपचार करने की घटना का उल्लेख किया। उसके संक्रमित शरीर से भारी दुर्गन्ध निकलती थी तथा लोगों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भगाये जाते रहने के कारण वह सदा चलता रहता था। स्वामी जी ने उसे आश्रम की सीढ़ियों के पास देखा तथा वह कई महीनों तक

अपने हाथों से सावधानीपूर्वक उसकी मरहमपट्टी करते रहे। इसी प्रसंग में गुरुदेव ने भीषण कुष्ठरोग से पीड़ित एक पंजाबी साधु की घटना का उल्लेख किया जिसके पास कोई भी व्यक्ति एक पल भी नहीं ठहर सकता था; किन्तु चिदानन्द जी ने अपने हाथों से उसके कुष्ठपीड़ित हाथों तथा पैरों की मरहमपट्टी कर अपने पवित्र स्पर्श से उसे चमत्कारिक ढंग से स्वस्थ कर दिया। गुरुदेव ने स्वामी जी की अनुकरणीय सेवा की अतिशय प्रशंसा करने के पश्चात् श्रोताओं से प्रश्न किया : ''क्या आपमें से कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने अपने जीवन में एक बार भी ऐसी सेवा की हो?'' गुरुदेव के आकलन में स्वामी जी सर्वोत्कृष्ट प्रकार की निस्स्वार्थ सेवा में सर्वातिशायी हैं जिसे वह ऐसी पूर्ण श्रद्धा तथा निष्ठा से करते हैं कि वह भगवान् नारायण की पूजा बन जाता है।

गुरुदेव विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में जहाँ-कहीं भी भाषण देते वहाँ स्वामी जी योगासनों के प्रदर्शन की अपनी सेवाएँ अर्पित करने के लिए सदा तैयार रहते थे। कभी-कभी वह योगासनों के साथ-ही-साथ चलचित्र-प्रदर्शन पर विवरण भी देते थे। अन्नामलै विश्वविद्यालय में गुरुदेव के भाषण के पश्चात् सूर्य-नमस्कार, आसन, प्राणायाम तथा अन्य यौगिक क्रियाओं के चलचित्र के प्रदर्शन का कार्यक्रम था। स्वामी जी के प्रभावशाली वर्णन से यह चलचित्र-प्रदर्शन अपूर्व रीति से सजीव तथा शिक्षाप्रद बन गया। उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर योगासनों से उद्भूत लाभों को नवयुवकों को समझाया। उस वर्णन ने ऐसा भारी उत्साह उद्दीप्त किया कि अविलम्ब सैकड़ों छात्र योगासनों को सीखने के लिए आगे आये।

जब यात्रा-मण्डली चिदम्बरम् पहुँची तब गुरुदेव कुछ अस्वस्थ थे। इससे वह सार्वजनिक सभा में उपस्थित नहीं हो सके। उन्होंने सभा में भाषण देने के लिए अपने स्थान में स्वामी जी को प्रतिनियुक्त किया। गुरुदेव के एक पुराने सहपाठी कवियोगी शुद्धानन्द भारती भी उनके साथ गये। स्वामी जी सभा-स्थल पर पहुँचे तथा वहाँ उन्होंने अपने आध्यात्मिक उपदेश तथा भावपूर्ण कीर्तन की वृष्टि की। श्रोतागण पुलकित हो गये। गुरुदेव के भाषण के अभाव में उनमें निराशा की भावना नहीं आयी।

यात्रा-मण्डली ८ अक्तूबर को त्रिची पहुँची। स्वामी जी ने स्थानीय राष्ट्रीय महाविद्यालय में अध्यापकों तथा छात्रों के सम्मुख भाषण दिया तथा किस प्रकार हम सब एक ही भगवान् की सन्तान हैं, इस मूलभूत सत्य को उन्हें बहुत ही सरल तथा आकर्षक ढंग से समझाया। उन्होंने आत्मसाक्षात्कार के व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया और माना कि एक रत्तीभर अभ्यास मनों सिद्धान्त से श्रेयस्कर है। उन्होंने 'उपदेशामृत' के प्रसिद्ध गान में गुरुदेव के उपदेशों का समाहार किया :

सेवा करो, प्रेम करो, दान करो, शुद्ध बनो,
ध्यान करो और करो आत्मसाक्षात्कार।
भले बनो, भला करो, सदय बनो और बनो करुणात्मा।
करो पालन अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का।
यही है योग और वेदान्त का सार।
प्रश्न करो कौन हूँ मैं, जानो अपनी आत्मा को और बनो मुक्त।
तुम हो नहीं यह देह और न हो यह मन, तुम हो अमर आत्मा।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

यात्रा-काल में स्वामी जी को कभी-कभी गुरुदेव की भूमिका अदा करनी पड़ती थी जिसे उन्होंने प्रत्येक अवसर पर आयोजकों तथा भक्तों के परम सन्तोषप्रद रूप से सम्पन्न किया। उदाहरणार्थ, शिवानन्द साधना निलयम, तिरुइंगोमलै के अध्यक्ष स्वामी शंकरानन्द ने गुरुदेव से आश्रम में पधारने तथा आश्रमवासियों को आशीर्वाद देने की प्रार्थना की थी; किन्तु गुरुदेव के लिए तिरुइंगोमलै जाना सम्भव न था। तथापि वह आश्रमवासियों को निराश भी करना नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने स्वामी जी को निजी प्रतिनिधि के रूप में उस प्रतिमान-आदर्श आश्रम में भेजा। वह आश्वस्त थे कि उनका सन्देश उनके योग्य अभिकर्ता के द्वारा शिवानन्द साधना निलयम में कार्यसाधक रूप में पहुँच जायेगा। स्वामी जी ने गुरुदेव के आदेश के अनुसार नियत स्थान को प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचने पर 'साधना निलयम कैसे गुरुदेव की स्वामी अद्वयानन्द को अपरोक्ष प्रेरणा तथा उनके सशक्त सुझाव का परिणाम था, ऐसे आध्यात्मिक केन्द्रों की क्योंकर अपरिहार्य आवश्यकता है और उनका अद्वितीय महत्त्व क्या है तथा गुरुदेव को ऐसी आध्यात्मिक संस्थाओं द्वारा किस प्रकार की अद्‌भुत आध्यात्मिक क्रान्ति लाना अभीष्ट है' आदि विषयों पर प्रवचन किया। उन्होंने परम विनम्रतापूर्वक श्रोताओं को बतलाया कि वह तो अपने प्रिय गुरुदेव के निमित्त मात्र हैं। इस प्रशस्त भाव से उन्होंने निलयम में चाँदी की खुरपी (रजत कर्णी) के साथ प्रस्तावित विद्यालय-भवन की आधारशिला रखी, बाद में निलयम के अध्यक्ष स्वामी शंकरानन्द ने अपनी भावना व्यक्त की कि स्वामी जी की पवित्र उपस्थिति तथा उनके प्रेरणादायी भाषण ने वैसा ही वातावरण उत्पन्न किया जैसा कि वे गुरुदेव की उपस्थिति से आशा करते थे।

यात्रा-मण्डली के रामेश्वरम् पहुँचने पर गुरुदेव स्वयं पवित्र गंगाजल को उठा कर ले गये और उसे अभिषेक के रूप में भगवान् शिव को अर्पित किया जब कि स्वामी जी ने भगवान् की स्तुति में स्तोत्रों का पाठ किया तथा रोमहर्षक भजन गाये।

मण्डली ने सागर पार किया तथा वह श्रीलंका द्वीप जा पहुँची। गुरुदेव ने कोलम्बो में एक विशाल सार्वजनिक सभा को सम्बोधित किया। सभा के अनन्तर योगासनों का एक चलचित्र दिखलाया गया। स्वामी जी आसनों के लाभ का चल-विवरण देने के लिए यहाँ पुन: आगे आये। उन्होंने पश्चिमी जगत् के शारीरिक व्यायामों तथा भारतीय योगासनों का साम्य तथा वैषम्य दिखलाया और योगासनों की अधिक श्रेष्ठता को सिद्ध किया। अन्त:स्रावी तथा अप्रणाल-ग्रन्थियों को योगासन कैसे आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित करते हैं, इसका वर्णन किया। उन्होंने और भी संकेत दिया कि थायरायड (अवटु), श्लेषमीय (पीयूष) तथा शंकुरूप-ग्रन्थियों की असम्यक् कार्यता को कुछ चुने हुए आसनों के क्रम से सुधारा जाता है।

वापसी यात्रा

वापसी यात्रा-काल में त्रिवेन्द्रम में प्रात:काल एक सत्संग हुआ। स्वयं गुरुदेव की उपस्थिति में स्वामी जी ने ध्यान-सत्र का संचालन किया जिसमें भाग लेने वालों ने उच्चतर ध्यान की मन:स्थिति में अपने को बलात् आकृष्ट तथा तल्लीन होते हुए अनुभव किया। ध्यान-सत्र की समाप्ति पर स्वामी जी ने अन्तरंग साधना के रहस्य पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने प्रबोधक भाषण में ध्यान में सफलता के लिए साधकों को निम्नांकित सूत्र अपनाने के लिए कहा :

देखो, पर ध्यान न दो।
सुनो, पर कान न दो।
स्पर्श करो, पर स्पर्श-भान न हो।
चखो, पर स्वाद न लो।

स्वामी जी ने आगे कहा कि इस भावना से साधक सांसारिक विषयों में आसक्त नहीं होता और वह शनैः-शनैः साक्षी-भाव विकसित करने में सक्षम हो जाता है। एक बार साधक के साक्षी की अभिज्ञा प्राप्त कर लेने पर वह आत्मनिष्ठ हो जाता है और अपने निज-स्वरूप में निवास करता है। इस प्रकार साधक अपने ध्यानाभ्यास में सफलता प्राप्त करता है। इस प्रबोधक प्रवचन को सुन कर गुरुदेव को अत्यधिक प्रसन्नता हुई तथा उन्होंने स्वामी जी की उनके इस प्रांजल तथा प्रभावकारी प्रतिपादन के लिए सराहना की।

इस भाँति अखिल भारत-यात्रा पर्यन्त स्वामी जी अपने स्वास्थ्य की परवाह न कर तथा अपने शरीर पर सौंपे गये असाधारण भारी श्रम की पूर्ण उपेक्षा कर गुरुदेव का आदेश पालन करने के लिए प्रत्येक अवसर पर तत्काल बाहर आते तथा उमड़ती हुई भीड़ को सम्बोधित करते, श्रुतिमधुर कीर्तन करते, योगासनों का प्रदर्शन करते तथा उनके लाभ बतलाते और जिज्ञासुओं की शंकाओं को विदूरित करते थे। वह प्रत्येक बार अपने श्रोताओं पर सशक्त प्रभाव छोड़ते थे। उनके प्रवचन, विशेष रूप से ध्यान-विषयक प्रवचन, श्रोताओं को उत्कृष्ट आध्यात्मिक कम्पन से पूरित कर उन पर आश्चर्यकर प्रभाव डालते थे।

इस युगान्तरकारी अखिल भारत-यात्रा की सफलता में स्वामी जी का योगदान निश्चय ही उच्च कोटि का था। उन्होंने एक समर्पित

उपकरण के रूप में गुरुदेव से अपने को सम्बद्ध किया तथा लोगों के मन पर गुरुतर प्रभाव डाला। उनकी विवेचनात्मक-शक्ति, उनका सहजोपलब्ध ज्ञान और सर्वाधिक उनकी अतुलनीय शुचिता तथा विनम्रता ने विपुल संख्या में महाविद्यालय के युवक छात्रों को अपना मिथ्याभिमान परित्याग करने तथा गीता के स्वाध्याय को अपनाने, योगासनों का अभ्यास करने तथा मानव-जाति की सेवा तथा ईश्वर की खोज करने के लिए आत्मसमर्पण करने को प्रेरित किया।

इस युगान्तरकारी यात्रा में गुरुदेव एक असाधारण महान् (भीमकाय) आध्यात्मिक विभूति के रूप में दिखायी पड़े। उन्होंने लोगों को उनकी अकर्मण्यता से प्रबोधित करने के लिए वेदान्त के आदेशों की गरजना की। उनकी उपस्थिति मात्र किसी भी व्यक्ति को पराभूत करने वाली थी। ऐसे आध्यात्मिक महामानव के सम्मुख कोई भी अन्य व्यक्ति नगण्य बन गया होता, किन्तु इस समर्पित शिष्य की अन्त:आध्यात्मिक सम्पत्ति ऐसी थी कि उसने अपनी असाधारण विनम्रता, अनुकरणीय गुरुभक्ति, चुम्बकीय व्यक्तित्व तथा सहजोपलब्ध ज्ञान से सभी के हृदय में अपना विशेष स्थान बना लिया। वह गुरुदेव की उपस्थिति में अपने विषय में जो इतनी प्रशंसा उत्पन्न कर सके वह स्वयं में इनके उस सर्वोच्च आध्यात्मिक आयाम का महत्तम प्रमाण है जिसे वह उस समय तक उपलब्ध कर चुके थे।

स्वामी चिदानन्द जी ने भारतवर्ष के लोगों की यह सेवा गुरु-सेवा-कार्य के रूप में की और उन्होंने आज भी वैसा करना बनाये रखा है। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार से गुरुदेव के एक यन्त्र के रूप में व्यवहार किया। अनेक स्थानों पर लोगों ने उनके प्रति उतना ही प्रेम तथा समादर प्रदर्शित किया जितना कि स्वयं गुरुदेव के प्रति उनमें था;

किन्तु सम्मान तथा प्रशंसाओं से वह रंचमात्र भी संस्पृष्ट नहीं हुए, अप्रभावित ही रहे। जैसा १९५० के बाद भी उन्होंने गुरुदेव के सेवक के रूप में ही भारतवर्ष के लोगों की सेवा करना जारी रखा है। उन्होंने अपना कोई निजी नया सिद्धान्त रखने का दावा नहीं किया; गुरुदेव की संस्था की सेवा की और उसी में उन्हें परम सन्तोष था। वास्तव में यह अपने लिए तो केवल हिमालय की किसी गुहा में मध्य दीर्घ-कालिक अखण्ड मौन की कामना अपने हृदय में सँजोये हुए थे। यह अभीष्ट आदर्श इस युगान्तरकारी यात्रा-काल में आश्रम के अपने एक घनिष्ठ मित्र के नाम लिखे हुए उनके पत्रों में से एक पत्र में प्रतिबिम्बित होता है।

इन्होंने लिखा : ''मैं इन मोटरकारों, बड़े बँगलों, दुकानों, नाट्यशालाओं तथा विलासमय वस्त्रधारी लोगों से कुछ ऊब-सा गया हूँ। मैं जीर्ण-शीर्ण तथा मैली-कुचैली धोती पहन कर आश्रम के विश्वनाथ-मन्दिर के पृष्ठभाग के जंगलों में विचरण करने को लालायित हूँ।'' ये अल्प-शब्द नाम और यश की सांयोगिक घड़ी में स्वामी जी की अनासक्ति तथा उनके वैराग्य का प्रबल प्रमाण उपस्थित करते हैं। **निस्सन्देह यह बहुत बड़े हो-हल्ले में यात्राएँ करते तथा चलते-फिरते थे, किन्तु अपने अन्दर की गहराई में यह प्रशान्त एकान्त के अजेय जगत् में ही निवास करते रहे।** व्यस्ततम कार्यक्रम के दिनों में भी यह ध्यान का अपना समय कभी भी हाथ से जाने नहीं देते थे। अनवरत कार्य के बावजूद भी यह अकस्मात् पल मात्र में बाह्य जगत् का परित्याग कर सकते थे। निम्नांकित शब्द, जो स्वामी जी ने यात्रा-काल में अपने एक घनिष्ठ मित्र को लिखे थे, इनकी अन्तर्मुखी अवस्था तथा गम्भीर मौन में आनन्दमय अनुभूति को व्यक्त करते हैं।

इन्होंने लिखा : ''कल हमने (धनुष्कोटि से श्रीलंका जाते हुए) दो घण्टे जलपोत में व्यतीत किये।...विस्तीर्ण सागर के सम्मोहक जल ने मेरी सम्पूर्ण सत्ता को अपने अधिकार में कर लिया और मुझे बन्दी बनाये रखा। अबाध शान्ति थी। इन्द्रियाँ तथा मन शान्त हो गये थे और मुझे व्यक्तित्व से ऊपर उठा कर किसी ऐसे स्थान में फेंक दिया गया था जहाँ परम नीरवता और उस नीरवता से उत्पन्न मूक आनन्द था। सब-कुछ विस्मृत हो चला था।''

अपनी सत्ता के अन्तर्तम प्रकोष्ठ में इस अभिज्ञा के साथ स्वामी जी गुरुदेव के साथ रहे तथा उन्होंने उनकी तथा भारतवर्ष और श्री लंका के भाग्यशाली नागरिकों की उनके महान् आध्यात्मिक जागरण में सेवा की। गुरुदेव शिवानन्द ने भगवान् की आज्ञा का पालन किया और उनके समर्पित शिष्य चिदानन्द ने गुरुदेव के आदेशों को कार्यान्वित किया। दोनों ने ही भारत के साधारण नागरिकों को वेदों के आह्वान को स्मरण कराने तथा उन्हें पुण्य भूमि के ऋषियों तथा मुनियों के भाग्यशाली वंशज होने के नाते धर्मप्रसार के प्रशंस्य कार्य को अपने हाथ में लेने के लिए स्मरण कराने को उनके द्वार खटखटाये।

नयी दुनिया में

''वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

सब-कुछ वासुदेव ही है, (इस प्रकार जो ईश्वर को भजता है)
वह महात्मा अति-दुर्लभ है'' (गीता : ७-१९)।

सन् १९५० की युगान्तरकारी अखिल भारत-यात्रा से स्वामी जी सनातन धर्म के एक विशिष्ट सन्देशवाहक के रूप में उभर कर सामने आये। गुरुदेव को, जो आधुनिक जगत् के लिए चिदानन्द के भावी गौरव के विषय में कई बार भविष्यवाणी कर चुके थे, अपने उस विश्वास को सत्य सिद्ध होते हुए पा कर प्रसन्नता हुई। वह पहचान सके थे कि पाश्चात्य जगत् में भारतवर्ष का सनातन सन्देश ले जाने के लिए स्वामी जी ही सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं। उनके दिव्य जीवन का सन्देश-अनुदेश विश्व में चतुर्दिक् पहुँचाने तथा उसके मुख्य व्याख्याता तथा अनुकरणीय आदर्श होने के लिए उनके शिष्यों में वे ही सर्वाधिक उत्कृष्ट रूप से उपयुक्त हैं।

परन्तु स्वामी जी का अपने लिए इससे कुछ भिन्न ही कार्यक्रम था। हिमालय की विरल ऊँचाइयों में अतिचेतना की आनन्दमय अवस्था में सदा-सर्वदा रहने के प्रयास में वह एकान्त जीवन की ओर शनैः-शनैः अधिकाधिक खिंचते जा रहे थे। इस भाँति वे गुरुदेव की अनुमति से सन् १९५८ की ग्रीष्म ऋतु में बदरीनारायण चले गये और वहाँ आभ्यन्तरिक मौन में कई महीने वास किया। मन्दिर को शीत ऋतु के लिए बन्द होना था, अतः स्वामी जी दिसम्बर में नीचे आश्रम वापस आ गये; किन्तु यह तब भी इतने अन्तर्मुखी तथा एकान्तसेवी बने रहे कि गुरुदेव ने इन्हें उत्तरकाशी जाने

का परामर्श दिया तथा काली कमली वाला क्षेत्र के प्रबन्धक से स्वामी जी को उपयुक्त आवास प्रदान कराने के लिए उत्तरकाशी में अपनी संस्था के शाखा-प्रबन्धक को पत्र लिखने के लिए अनुरोध किया। गुरुदेव ने यह व्यवस्था ३१ दिसम्बर १९५८ को की; किन्तु यह मूर्तरूप लेने वाली न थी। इस योजना में आकस्मिक परिवर्तन हुआ। स्वामी राधा, जिन्होंने वैंकूवर में शिवानन्द-आश्रम स्थापित कर रखा था, इसी बीच आनन्द-कुटीर पधारीं तथा उन्होंने वैंकूवर-आश्रम के जिज्ञासुओं को प्रेरणा देने तथा उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए अपने वरिष्ठ संन्यासी शिष्यों में से किसी एक को वहाँ जाने तथा तीन-चार माह तक रुकने के लिए गुरुदेव से प्रार्थना की। गुरुदेव ने उन्हें आवश्यक व्यवस्था करने का विश्वास दिलाया। अत: गुरुदेव ने स्वामी जी के विषय में अपनी योजना में सुधार कर उन्हें वैंकूवर भेजने का विचार किया; क्योंकि वह दिव्य जीवन के सर्वाधिक सुसंस्कृत तथा योग्य सन्देशवाहक थे। वह जानते थे कि स्वामी जी के लिए, जो उत्कृष्ट कोटि का आध्यात्मिक ज्ञान तथा सन्तुलन प्राप्त कर चुके हैं, कनाडा अथवा उत्तरकाशी से कोई अन्तर नहीं पड़ता। अत: उन्होंने उन्हें अपने पास बुलाया और पश्चिमी गोलार्ध में योग तथा वेदान्त के सन्देश का प्रचार करने के लिए कनाडा जाने के लिए कहा। स्वामी जी ने गुरुदेव को विनम्रतापूर्वक स्मरण दिलाया कि उत्तरकाशी जाने के लिए उनके लिए पहले से ही प्रबन्ध किया जा चुका है; किन्तु गुरुदेव ने केवल इतना ही कहाह्न्ह्न''भगवत्-कार्य-सेवा ही उत्तम है।'' इस प्रकार गुरुदेव ने स्वामी जी को स्मरण दिलाया कि उनका जन्म एक महत् उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूर्व तथा पश्चिम के मानवों का उत्थान करने के लिए हुआ है। स्वामी जी गुरुदेव के सम्मुख नतमस्तक हुए और मन-ही-मन गुनगुनायेह्न्ह्न''हे प्रभु! तेरी ही इच्छा पूर्ण हो।'' इस भाँति निस्स्पृह महात्मा जिसने एकान्त में

अखण्ड ध्यान के लिए अपने को अर्पित कर देने का निश्चय कर लिया था, अब भगवान् तथा गुरुदेव की इच्छा के परिपालन में अमरीका की व्यापक यात्रा आरम्भ करने को प्रेमपूर्वक सहमत हो गया।

किन्तु स्वामी राधा गम्भीर रूप से रुग्ण हो गयीं तथा उनकी यात्रा का आवश्यक प्रबन्ध न कर सकीं और उन्हें गुरुदेव की इच्छानुसार आश्रम में समय की प्रतीक्षा करते रहना पड़ा। गुरुदेव की एक अन्य भक्त महिला अमरीका के मिल्वाकी नगर की श्रीमती विक्टोरिया कोयण्डा ने, जो पहले आश्रम आ चुकी थीं, इसी बीच यह सुना कि स्वामी जी के कनाडा आने की कुछ सम्भावना है। उन्होंने स्वेच्छा से मार्ग-व्यय भेज दिया तथा गुरुदेव से स्वामी जी को किसी प्रकार से भेजने की प्रार्थना की। अत: गुरुदेव ने स्वामी जी को श्रीमती कोयण्डा का निमन्त्रण स्वीकार करने तथा प्रथम अमरीका और तत्पश्चात् कनाडा जाने का परामर्श दिया। यह दैवकृत व्यवस्था थी जो स्वामी जी को उत्तरकाशी के स्थान पर अमरीका ले गयी। स्वामी जी ने यथासम्भव न्यूनातिन्यून निजी सामान तथा गुरुदेव के उत्कृष्टतम आशीर्वाद के साथ ३० अक्तूबर को आश्रम से प्रस्थान किया। संयुक्त राज्य अमरीका के लिए विदा होने की पूर्व-सन्ध्या ३१ अक्तूबर को नयी दिल्ली के कान्स्टीट्यूशन क्लब हाल में स्वामी जी ने एक सार्वजनिक सभा को सम्बोधित किया। पाश्चात्य देशों के नाम शिवानन्द के सन्देश की चर्चा करते हुए उन्होंने पुलकित स्वर से भाषण समाप्त कियाह्न ''हे मानव! आप तत्त्वत: दिव्य हैं। ईश्वर-परायणता आपमें अन्तर्विष्ट है। आप इस संसार के नहीं हैं, पार्थिव शरीर मात्र ही नहीं हैं। आप सच्चिदानन्द के प्रकाश की दीप्ति से पूर्ण आत्मा हैं। वही आपका परम स्रोत है, आपका अन्तरतम सत्त्व है और आपका प्रशस्य चरम लक्ष्य है।''

स्वामी जी ने २ नवम्बर १९५९ को दिल्ली से वायुयान द्वारा अमरीका को प्रस्थान किया। मार्ग में वह केयरो में रुके जहाँ दिव्य जीवन संघ की स्थानीय शाखा के मुहम्मद अब्दुल्ला अल मेंहदी ने उनका स्वागत किया। इसी भाँति इस्तानबुल में पत्रकार अलरिज़ा आकिशां ने इनका स्वागत किया। इस्तानबुल के अधिकांश समाचारपत्रों ने इनके आगमन का व्यापक प्रचार किया। स्वामी जी से पत्रकारों तथा तुर्की के एक प्रमुख समाचार फिल्म संस्थान ए. डी. सी. ने भेंटवार्ता की। यहाँ इन्होंने इस्तानबुल उच्च विद्यालय में योगासनों का प्रदर्शन किया तथा इस यात्रा का अपना प्रथम सार्वजनिक भाषण दिया। यहाँ इन्होंने छात्रों को आदर्श जीवन-यापन करने तथा निर्दोष चरित्र निर्माण करने की प्रेरणा दी। स्वामी जी ने न्यूयार्क जाते हुए मार्ग में रोम, डसेल्डोर्फ तथा लन्दन में विराम किया। जब यह न्यूयार्क पहुँचे तो इन्होंने स्वामी विष्णुदेवानन्द को हवाई पत्तन पर प्रतीक्षा करते हुए देखा। गुरुदेव शिवानन्द के शिष्य तथा इनके गुरुभाई स्वामी विष्णुदेवानन्द ने हठयोग के प्रचार के लिए अमरीका के विभिन्न भागों में शिवानन्द योग-वेदान्त-केन्द्र खोल रखे हैं। स्वामी चिदानन्द जी महाराज ने कार्निश आर्म्स होटल के योग-वेदान्त-केन्द्र में रुक कर तीन प्रवचनों की शृंखला में १८, २० तथा २१ तारीख को क्रमश: 'राजयोग', 'हिन्दू-दर्शन में माया की संकल्पना' तथा 'कर्म और पुनर्जन्म' विषयों पर प्रवचन किये। यह श्रोताओं के लिए एक असाधारण अनुभव था। जब वे सशक्त वाग्मिता तथा तर्क के शिखर पर पहुँच रहे थे उसी समय उन्होंने श्रद्धेय स्वामी जी द्वारा प्रजनित अतिबृहत् आध्यात्मिक शक्ति अनुभव की जिसने एक तर्कातीत ढंग से उनकी सम्पूर्ण सत्ता पर अधिकार कर लिया। यह श्रोताओं में से प्रत्येक के लिए 'मैं आया, मैंने देखा, मैं विजित हुआ, मैं सम्मोहित हो गया' प्रबल आकर्षण का एक रोमांचकारी उदाहरण था।

स्वामी जी ने २६ नवम्बर को न्यूयार्क से वायुयान द्वारा प्रस्थान किया और उसी दिन मिल्वाकी (विसकान्सिन) पहुँच गये जहाँ श्रीमती तथा श्रीमान् कोयण्डा ने उनका हार्दिक स्वागत किया। **इस महान् भारतीय योगी के आगमन पर मिल्वाकी के दैनिक ने समाचार प्रकाशित किया कि शिवानन्द का आध्यात्मिक सन्देशवाहक योग तथा वेदान्त के प्रचार के लिए अमरीका पहुँच गया है।**

स्वामी जी २ दिसम्बर १९५९ को अमरीका में प्रथम बार दूरदर्शन पर आये और उसके शीघ्र बाद ही उन्होंने आकाशवाणी पर 'दिव्य जीवन के सन्देश-उपदेश' विषय पर भाषण दिया। उन्होंने बताया कि सत्य, अहिंसा तथा पवित्रता धर्म तथा आध्यात्मिकता के सार हैं। वे योग तथा वेदान्त के भी सार हैं। निस्स्वार्थ सेवा, वैश्व प्रेम, उदारता, शुचिता, उपासना तथा ध्यान अपने-आपसे तथा अचूक रूप से प्रबोध तथा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करायेंगे। इस प्रकार उन्होंने अमरीकावासियों को गुरुदेव शिवानन्द के सुसमाचार के विषय में बतलाया और अपने व्यक्तिगत सम्पर्क में अपनी गम्भीर निष्कपटता, परम शुचिता तथा गहरी विनम्रता से उन्हें प्रभावित किया।

स्वामी जी ने ६ दिसम्बर को मिल्वाकी के योग-वेदान्त-केन्द्र की प्रथम सभा में भाषण दिया और योग के व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए लगभग सौ जिज्ञासुओं को समाकृष्ट किया। उन्होंने १४ दिसम्बर को एक संक्षिप्त पाठ्यक्रम आरम्भ किया। यह सूर्यनमस्कार, योगासन, प्राणायाम तथा ध्यान का दैनिक वर्ग चलाते थे। इन्होंने इन वर्गों की पाठ्यपुस्तक के रूप में गुरुदेव की अँगरेजी पुस्तक 'राजयोग के चौदह अध्याय' को अपनाया और यह अपने निजी विलक्षण रूप से उन्नतकारी तथा अप्रतिम

शैली में पुस्तक के भावों को समझाते थे। यह ६०७, कालेज ऐविन्यू में श्रीमती तथा श्रीमान् कोयण्डा के निवास-स्थान पर भी ध्यान का दैनिक वर्ग चलाते थे। स्वामी जी की पवित्र उपस्थिति से आतिथेय अवर्णनीय आनन्द से परिपूर्ण थे। मिल्वाकी में उनके प्रवचनों के विषय थेह्न'ईसाइयों के लिए योग', 'योग तथा आत्मोत्थान', 'नव-जीवन' तथा 'ध्यानाभ्यास'। किवानिस क्लब तथा साउथ मिल्वाकी पब्लिक स्कूल में इन्होंने 'योग में मनोविज्ञान', 'जीवन के प्रति हिन्दुओं का दृष्टिकोण', 'वैदिक संकल्पनाएँ तथा आदर्श' तथा 'नवयुवकों के लिए महत्त्वपूर्ण आदर्श' विषयों पर भाषण दिये। इन सभी भाषणों में न तो बौद्धिक इन्द्रजाल था और न ही रहस्यवाद की दुर्बोधता। वे इनके निजी वैयक्तिक अनुभवों पर आधारित तथा उनके द्वारा प्रमाणित थे तथा उनमें बहुत ही व्यावहारिक तथा सीधे-सादे निरूपण तथा अनुदेश समाविष्ट थे। मिल्वाकी के अपने आवास-काल में यह श्रीमती विक्टोरिया की बहन श्रीमती वीरा बर्च के घर गये थे। वहाँ उन्होंने ३६२०-ई, अण्डरवुड ऐविन्यू, कुडाही, विसकान्सिन में दो विशेष सत्संगों में अपना धर्मोपदेश दिया। पत्रकार तथा लेखिका डोरोथी मैडल बाद के अपने अतीत के मधुर दिनों के संस्मरणों में लिखती हैं : ''अपने पारम्परिक परिधान में यह कृशकाय संन्यासी कोयण्डा की बैठक में सन्तोषपूर्वक बैठे हुए निरभिमान रूप से प्रश्नों के उत्तर देते थे। स्वामी जी ने बताया कि अब योग में गोपनीयता की आवश्यकता नहीं रही। योग धर्म नहीं है। यह भगवान् के निकटतर जाने की एक प्रविधि है।'' जनवरी ११६० के मध्य में स्वामी जी मिन्नियापोलिस गये जहाँ इन्होंने 'भारत की आध्यात्मिक संस्कृति तथा आधुनिक मानव के जीवन में उसकी प्रासंगिकता' पर पाँच भाषण दिये। भाषणों के इस कार्यक्रम की व्यवस्था नवयुवक क्रिश्चियन संघ ने की थी तथा इनमें लोगों की उपस्थिति अच्छी रही।

प्राच्य-पाश्चात्य सांस्कृतिक केन्द्र के डा. जूडिथ टाइबर्ग के अनुरोध पर स्वामी जी ७ फरवरी १९६० को लास ऐंजिलेस गये और वहाँ एक मास तक रुके। इस अवधि में उन्होंने अमरीकावासियों पर अत्यधिक आध्यात्मिक प्रभाव डाला। प्राच्य-पाश्चात्य सांस्कृतिक केन्द्र, ११६२, नार्थ स्ट्रीट, एण्ड्रूस पी. एल. में 'योग-विषयक क्या और क्यों का प्रश्न' पर उनके भाषण ने अत्यधिक हलचल तथा आध्यात्मिक उद्‌बोधन उत्पन्न किया तथा अनेक प्रतिष्ठित तथा विद्वान् लोगों ने यह स्वीकार किया कि स्वामी जी एक असाधारण आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। इसी अवधि में एक सच्चे जिज्ञासु पीटर मन ने जो स्वामी जी से मिले, लिखाह्न ''भारत से यहाँ आये हुए स्वामी चिदानन्द पर दृष्टिपात करते ही आप यह समझ जायेंगे कि वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं, किन्तु यह विचार उनके काषाय रंग के संन्यासी परिधान अथवा उनके बारीक कटे केश के कारण नहीं उत्पन्न होता है और न उनके दुष्कर पद्मासन में बैठने के कारण उत्पन्न होता है, वरन् यह निश्चय ही उनके विशाल, श्यामल तथा चमकीले नेत्रों के कारण उत्पन्न होता है। उनमें रहस्यमयी गम्भीरता प्रतिबिम्बित होती है।'' लास ऐंजिलेस के अपने प्रवचनों में स्वामी जी ने अपना मत व्यक्त किया कि योग धर्म से परे है और जो भी ईश्वर में विश्वास करता है उसे वह प्राप्य है। उन दिनों स्वामी जी का नाम प्रत्येक व्यक्ति के होठों पर था। २२ फरवरी को 'लास ऐंजिलेस इग्ज़ैमिनर' समाचार-पत्र ने अपने सोमवार के अंक में स्वामी जी की वाग्मिता की प्रशंसा करते हुए संवाद प्रकाशित किया। उसने स्वामी जी की व्याख्या के अद्‌भुत प्रभाव पर टिप्पणी की : ''प्राच्य-पाश्चात्य सांस्कृतिक केन्द्र में जब आप स्वामी चिदानन्द से वार्ता करते हैं, तब वह योग-विषयक क्या और क्यों के प्रश्न का रहस्य उद्‌घाटित करते हैं।''

श्रीमती मेटा थर ओल्सन, जो स्वामी शिवानन्द को पहले से ही जानती थीं, चिदानन्द से इतना अधिक प्रभावित हुईं कि उन्होंने गुरुदेव को लिखा : ''मैं आपको यह भी बतला देना चाहती हूँ कि केनिथ तथा मैं स्वामी चिदानन्द से अत्यधिक सानुकूल रूप से प्रभावित हुई हैं। हम अनुभव करती हैं कि यदि आप स्वयं इस समय अमरीका नहीं आ सके तो आपने अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए हर प्रकार से उत्कृष्टतम सन्देशवाहक भेजा । जब कोई भी व्यक्ति इस व्यक्ति के बाह्य परिधान के नीचे झाँकता है तो वह वहाँ अनेक सद्गुणों से सम्पन्न एक बहुत ही साधु आत्मा के दर्शन करता है। इनमें प्रभु के प्रति कितनी अगाध भक्ति है और कितने निष्कपट हैं यह ! मैंने इन्हें यहाँ अपने घर में ध्यान से देखा तथा इनके भाषण को सुनने पर यह अनुभव किया कि यह अपने प्रिय गुरुदेव के प्रतिबिम्ब हैं।...उनसे परिचित होना निश्चय ही बड़े सद्भाग्य की बात है। मैं ठीक-ठीक इनकी प्रशंसा नहीं कर सकती।...इन्हें यह पता नहीं है कि यह सब सुन्दर बातें आपको बतलाने के लिए पत्र लिख रही हूँ। यह इतने विनम्र तथा भाग्यशाली आत्मा हैं कि मुझे विश्वास है कि यह आपको स्वयं कभी नहीं बतला सकेंगे।''

स्वामी जी लास ऐंजिलेस के अपने आवास-काल में माउण्ट वाशिंगटन में सेल्फ रिअलाइज़ेशन फेलोशिप (Self Realisation Fellowship) का प्रमुखालय भी देखने गये जहाँ यह सेल्फ रिअलाइजेशन फेलोशिप की अध्यक्षा दया माता के अतिथि थे। सिस्टर दया परमहंस योगानन्द की, जो अमरीका में क्रियायोग को लोकप्रिय बनाने में बहुत सफल रहे थे, शिष्या हैं। वह स्वामी जी के दिव्य व्यक्तित्व से इतना अधिक प्रभावित हुईं कि गुरुदेव शिवानन्द को लिखने को प्रेरित हुईं : ''आपके निष्ठावान् शिष्य श्री

स्वामी चिदानन्द जी महाराज हमारे यहाँ भी आये हैं और इस समय एन्सीनिटास में हमारे आश्रम में कुछ दिनों के लिए ठहरे हुए हैं। हम उन्हें अपने मध्य पा कर अत्यधिक प्रसन्न हैं; क्योंकि उनकी विनम्रता, सरलता तथा शुचिता ने हमारे हृदय को जीत लिया है। वह हम लोगों तक ऋषिकेश के गंगा-तट से दिव्य जीवन का नवीन प्रेरणाप्रद संस्पर्श भी लाये हैं।''

स्वामी जी लास ऐंजिलेस में लगभग एक माह तक योग के वर्गों का संचालन करते तथा योग तथा वेदान्त पर भाषण देते रहे थे। तत्पश्चात् वह सैन फ्रान्सिस्को गये जहाँ उन्होंने एक माह दिव्य जीवन के सन्देश के प्रचार में लगाया। इन औपचारिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त, स्वामी जी से बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने समालाप किया जिसका उन पर अमिट प्रभाव पड़ा। सैन फ्रान्सिस्को के उनके आवास-काल की ऐसी ही एक वैयक्तिक भेंट स्मरण है जब वह एक जर्मन महिला माता पौला कोर्नेली को, जो एक उत्कृष्ट भक्त तथा निष्कपट साधक थीं, दर्शन देने के लिए जेम्स टाउन गये। यह बहुत ही रोचक मिलन था। इधर पौला माता उनके सौजन्य से सम्भ्रान्त तथा अत्यधिक प्रभावित अनुभव कर रही थीं और उधर स्वामी जी उनसे पूर्व-परिचित की भाँति परम विनीत भाव तथा प्रसन्न चित्त से मिल रहे थे तथा उनके साथ बहुत ही स्वाभाविक तथा सहज व्यवहार कर रहे थे। इस अल्पकालिक भेंट का प्रभाव कालान्तर में स्मरणीय बनना था। पौला माता ने अपने को सेवा तथा साधना के लिए पूर्णतया समर्पित कर दिया। उन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि व्यक्ति का जब क्षेत्र तैयार होता है तो बीज भी तैयार होता है और गुरु उपयुक्त समय पर उसकी देहलीज पर आ जाता है।

स्वामी जी ने १३ अप्रैल को सैन फ्रान्सिस्को से प्रस्थान किया और अल्पकाल तक पोर्टलैण्ड में ठहरने के पश्चात् वह माण्ट्रियल पहुँचे।

माण्ट्रियल में उन्होंने शिवानन्द योग-वेदान्त-केन्द्र, २०२९ स्टैनली स्ट्रीट के निर्देशक स्वामी विष्णुदेवानन्द की अनुपस्थिति में केन्द्र की प्रवृत्तियों का संचालन किया। यहाँ उन्होंने योग तथा भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों पर शृंखलाबद्ध भाषण दिया। माण्ट्रियल से १९ मई को उन्होंने वैन्कूवर बी. सी. को प्रस्थान किया जहाँ स्वामी राधा (श्रीमती हेल्मन) तथा अन्य भक्तों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। यहाँ शिवानन्दाश्रम, साउथ बर्नबाई के उपनगर के ६५९१ मार्लबरो ऐविन्यू में उन्होंने ध्यान के नियमित वर्ग चलाये तथा योग के विभिन्न अंगों पर शृंखलाबद्ध प्रवचन किया। उन्होंने पतंजलि के योगसूत्र, भगवद्गीता तथा उपनिषद् की अपने अनुभव की दृष्टि से शिक्षा दी। उन्होंने कनाडा के इस पश्चिमी भाग में मध्य अगस्त तक गुरुदेव की संस्था की सेवा की और तत्पश्चात् वह अपने गुरुदेव के अनुदेश से अगस्त के तृतीय तथा चतुर्थ सप्ताह में अपने निजी उद्देश्य से पश्चिमी जर्मनी गये।

अगस्त माह के अन्त में वह जर्मनी से प्रस्थान कर लास ऐंजिलेस पहुँच गये। उन्होंने हालीवुड में प्राच्य-पाश्चात्य सांस्कृतिक केन्द्र के तत्त्वावधान में 'योग के मूलतत्त्व' तथा 'जीवन की आध्यात्मिक मान्यताएँ' विषय पर शृंखलाबद्ध दश भाषण दिये। तत्पश्चात् अल्पकालिक विश्राम के लिए वह वैंकूवर चले गये। स्वामी जी की ख्याति अब तक इस विस्तीर्ण देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गयी थी। एशियन अध्ययन के अमरीकी विद्यापीठ ने उन्हें एक अतिथि प्राध्यापक के रूप में शृंखलाबद्ध भाषण देने के लिए सैन फ्रान्सिस्को आने के लिए आमन्त्रित किया। अतएव वह वैंकूवर से सैन फ्रान्सिस्को चले गये और वहाँ उन्होंने एशियन अध्ययन के अमरीकी विद्यापीठ के छात्रों को वेदान्त तथा भारतीय कुल-परम्परा पर व्याख्यान देते हुए चार मास व्यतीत किये। सैन फ्रान्सिस्को में अपने इस

चार माह के आवास की अवधि में उन्होंने वर्गों के संचालन तथा भाषण के बहुत ही उपयोगी तथा दीर्घकालीन कार्यक्रम रखे। वह सप्ताहान्त बिताने के लिए परम भक्त पौला माता के अतिथि के रूप में कभी-कभी जेम्स टाउन जाया करते थे। जेम्स टाउन में ऐसे अभ्यागमनों के समय पौला माता का आवास एक आश्रम का रूप ले लेता तथा आध्यात्मिक स्पन्दनों से भर जाता था। स्वामी जी यहाँ अपना सम्पूर्ण समय प्रवचनों, सत्संगों, सामूहिक ध्यान, योगासनों के वर्ग तथा बहुसंख्यक जिज्ञासुओं के सन्देह-निवारण के साक्षात्कारों में लगाया करते थे। उन्होंने दो बार स्थानीय नगर-भवन में भाषण दिया। अधिक प्रचार के बिना भी भवन विपुल श्रोताओं से आश्चर्यकर रूप से भर जाता था। वहाँ पर एकत्र होने वाले जिज्ञासुओं के लिए एक भगवत्साक्षात्कार-प्राप्त आत्मा के सम्पर्क के माध्यम से आध्यात्मिक स्पन्दन का यह अनूठा अनुभव था। स्वामी जी अपनी शालीनता तथा ज्ञान के कारण उन सबके प्रेम-पात्र बन गये।

स्वामी जी ने इन सत्संगों का आयोजन करने वाली दैवी योजना का उल्लेख करते हुए पौला माता को लिखा : ''यदि उस (विधि) की इच्छा तथा आपके प्राय: अनवरत स्मरण के पुण्य का बल न होता तो पश्चिमी जगत् में आने पर मैं प्रत्येक बार ही जेम्स टाउन बारम्बार आने को क्योंकर विवश होता?'' स्वामी जी के प्रति माता पौला की भक्ति की गाथा निस्सन्देह अद्वितीय तथा रोमांचकारी है। उन पर स्वामी जी का ऐसा भारी प्रभाव पड़ा कि बाद में स्वामी जी के अमरीका से प्रस्थान करने पर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति बेच डाली तथा समस्त सांसारिक सुखों को तिलांजलि दे कर शिवानन्दाश्रम आ गयीं। वहाँ उन्होंने परमाध्यक्ष की 'योग साधना कुटीर' के पास 'ॐ कुटीर' का निर्माण करवा कर अपना सारा समय पशुओं की सेवा

तथा ध्यान और प्रार्थना में व्यतीत किया। अपने अन्तिम दिनों में उनकी एकमात्र इच्छा यह थी कि मृत्यूपरान्त उनके शव को स्वयं स्वामी जी गंगा में विसर्जित करें। स्वामी जी ने रोमांचकारी परिस्थितियों में उनकी इस अन्तिम इच्छा को पूर्ण किया। इस भाँति चाहे पूर्व में हों या पश्चिम में, वह केवल औपचारिक कार्यक्रमों में ही नहीं बल्कि विशिष्ट भक्तों तथा जिज्ञासुओं में गहरी दिलचस्पी लेते थे। स्वामी जी ने सैन फ्रान्सिस्को से लास ऐंजिलेस को प्रस्थान किया। तत्पश्चात् वह सन् १९६१ के प्रारम्भ में हास्टेन (टेक्साज़), मिल्वाकी (विस्कान्सिन) तथा कुछ अन्य नगरों में गये तथा इन सभी स्थानों में उन्होंने गुरुदेव के सन्देश का प्रचार किया। तब वह शिवानन्द योग-वेदान्त-केन्द्र में अल्पकालिक निवास के लिए माण्ट्रियल गये। स्वामी जी ने उत्तरी अमरीका में लगभग डेढ़ वर्ष तक योग-वेदान्त की शिक्षा दी। तत्पश्चात् मार्च १९६१ में वे माण्ट्रियल से प्रस्थान कर न्यूयार्क और लन्दन में से प्रत्येक में एक सप्ताह रुके। लन्दन से उन्होंने अप्रैल के प्रथम सप्ताह में स्विट्ज़रलैण्ड को प्रस्थान किया। यहाँ पर उन्होंने एक माह तक प्रवचन किया तथा सेण्ट गाल के निकट ट्रोजन में ईस्टर आध्यात्मिक साधना-शिविर का संचालन किया।

तत्पश्चात् उन्होंने ज़्यूरिक, बैसेल तथा बर्न में सार्वजनिक भाषण दिये। स्वामी जी कैथोलिक पुजारी सन्त पैड्रेपियों के दर्शन करने के लिए स्विट्ज़रलैण्ड से इटली गये। यह ईसाई आचार्य फ्रान्सिस्कन सन्त थे। इनके दोनों हाथों, दोनों पैरों तथा शरीर के एक ओर क्षत-चिह्न थे। उन्होंने ईसा की पीड़ाओं से अपना तादाम्त्य किया था; उसी से इनके शरीर में पाँच क्षत-चिह्न हो गये। जब स्वामी जी ने आचार्य का दर्शन किया तब वह पर्याप्त वृद्ध हो चुके थे, सत्तर-अस्सी वर्ष की आयु के थे। इन वरिष्ठ सन्त ने

नवयुवक भारतीय स्वामी के प्रति शिष्टता दिखलायी। स्वामी जी ने उनसे उनके आशीर्वाद की याचना की तथा उनकी इस अल्पकालिक संगति से अत्यधिक सन्तोष अनुभव किया। भागवत पुरुष अपने मन तथा शरीर को भगवान् में पूर्णतया विलीन रखते हुए इसी प्रकार एक-दूसरे का आदर करते तथा एक-दूसरे को उद्बुद्ध करते हैं। इटली से स्वामी जी लन्दन गये। तत्पश्चात् वह पुन: न्यूयार्क गये जहाँ कुछ दिनों तक विराम करने के पश्चात् उन्होंने दक्षिणी अमरीका के लिए प्रस्थान किया।

वह २१ मई १९६१ को माण्टेवीडियो पहुँचे तथा २७ जुलाई को उन्होंने दिव्य जीवन संघ की माण्टेवीडियो शाखा का उद्घाटन किया। यहाँ चार महीने रुक कर उन्होंने सामूहिक ध्यान-सहित योग के विभिन्न पहलुओं पर नियमित वर्ग का संचालन किया। गुरुदेव के परम भक्त डा. ओर्लैण्डो पी. डाल स्वामी जी की दक्षिणी अमरीका की यात्रा के प्रमुख आयोजक थे। माण्टेवीडियो में स्वामी जी के आवास-काल में उरुगुई के तत्कालीन उप-विदेशमन्त्री डा. मैटियो जे. एम. मैगरिनोस स्वामी जी की आध्यात्मिक प्रभा से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने उनकी शिक्षाओं में गहन रुचि ली। स्वामी जी की उरुगुई की यात्रा ३० सितम्बर १९६१ को समाप्त हुई। माण्टेवीडियो शिवानन्द-केन्द्र के जिज्ञासुओं तथा छात्रों ने उन्हें हृदयस्पर्शी विदायी दी। अलेक्ज़ेण्डर एरु तथा उनके मित्रों के आमन्त्रण पर स्वामी जी ब्यूनिस आयर्स में योग के वर्ग तथा आध्यात्मिक प्रवचन के पंच-दिवसीय कार्यक्रम के लिए अर्जेन्टाइना गये।

वह ५ अक्तूबर १९६१ को वायुयान द्वारा अमरीका वापस लौटे तथा ६ तारीख को हास्टन (टेक्साज़) में उतरे। यहाँ उन्होंने तीन दिन तक सत्संग चलाया। श्री बैरी टिंकलर तथा प्रोफेसर अर्नेस्ट वुड ने भाषण के कार्यक्रमों

का आयोजन किया तथा स्वामी जी के आतिथेय रहे। तत्पश्चात् स्वामी जी सैन ऐन्टोनियो गये जहाँ उन्होंने प्रख्यात प्राकृतिक स्वास्थ्य-विज्ञानी डा. हर्बर्ट शेल्टेन से भेंट की। तत्पश्चात् वह प्राच्य-पाश्चात्य सांस्कृतिक केन्द्र के डा. जूडी टाइबर्ग के अतिथि के रूप में कैलीफोर्निया गये। मैरियो, ब्रोडाइन, टाम डैनेली, इना सेलिन, प्रूस, श्रद्धेय रेमर, श्रद्धेय गौन्ट, गुनर वाल्टर आदि अनेक सच्चे जिज्ञासु तथा पुराने भक्त स्वामी जी से मिलने तथा उनकी ज्ञानमयी वाणी सुनने के लिए लास ऐंजिलेस में एकत्रित हुए। स्वामी जी ने एक प्रार्थना-सभा में अपने उन्नतकारी भाषण से साधकों को प्रेरित किया तथा ध्यान का एक वर्ग चलाया।

लास ऐंजिलेस से वह २० अक्तूबर १९६१ को सैन फ्रांसिस्को पहुँचे और अगले दिन माता पौला कार्नेली तथा उनकी आध्यात्मिक गोष्ठी को दर्शन देने तथा वहाँ के जिज्ञासुओं को अपना आशीर्वाद देने के लिए जेम्स टाउन गये। माता पौला की अनवरत प्रार्थना ही उन्हें उस स्थान पर खींच लायी। जैसा कि स्वामी जी ने जिस रहस्यमय ढंग से उनकी अकथित किन्तु भक्तिभावपूर्ण प्रार्थना को प्राय: स्वीकार करते थे उसके विषय में बतलाते हुए उन्होंने बाद में उन्हें लिखा : ''मैं आपके पास ही हूँ। मैं अनादि-अनन्त-अन्तर्यामी के अंग के रूप में, जिससे मैं आत्मरूप में अभिन्न हूँ, आपके अन्दर निवास करता हूँ।'' उन्मुक्त वातावरण में सुनहरी धूप वाले शरत्कालीन आकाश के नीचे उन्होंने भक्तों को चिन्तनशील मनोदशा से आपूरित कर दिया तथा उन्हें अपनी प्रार्थना के द्वारा आशीर्वाद दिया। सैन फ्रांसिस्को वापस आ कर स्वामी जी ने वहाँ के मेटाफिज़िकल टाउन हाल में दिव्य जीवन संघ के भक्तों को पुन: सम्बोधित किया तथा कुछ

वैयक्तिक साक्षात्कारों में छात्रों तथा जिज्ञासुओं की शंकाओं को स्पष्ट किया।

सैन फ्रांसिस्को से उन्होंने पोर्टलैण्ड (ओरेगन) के लिए प्रस्थान किया जहाँ वह वेदान्त सोसायटी के श्री स्वामी अशेषानन्द जी से मिले और तत्पश्चात् वैंकूवर चले गये। वैंकूवर में स्वामी राधा, बिल ईलर्स, जो, हेल, कैरोल, श्रद्धेय प्रीस्टली, फ्रेड ब्लैक आदि भक्त एक रविवार को एकत्रित हुए और ६ नवम्बर १९६१ को स्वामी जी के आशीर्वादात्मक प्रवचन में अन्तर्विष्ट ज्ञान-स्रोत में गहराई से पान किया। स्वामी जी वैंकूवर से इवोवा गये जहाँ वह डा. आर. होलज़िंगर के अतिथि के रूप में रुके और एक प्रार्थना-सभा में भक्तों को अनुप्राणित किया। इवोवा से उन्होंने मिन्नेपोलिस को प्रस्थान किया। वहाँ दो सत्संगों में सम्मिलित हुए। तत्पश्चात् वह १० नवम्बर को मिल्वाकी गये जहाँ वह श्री जोसेफ तथा श्रीमती विक्टोरिया कोयण्डा के अतिथि के रूप में चौदह दिन ठहरे। यहाँ वह ऋषिकेश आश्रम के स्वामी शिवप्रेमानन्द से मिले जो उस समय मिल्वाकी आये हुए थे। उन्होंने २३ नवम्बर १९६१ को मिल्वाकी के भक्तों से विदा ली और न्यूयार्क के लिए प्रस्थान किया जहाँ वह चार दिन रुके तथा योग-वेदान्त-केन्द्र के छात्रों को सम्बोधित किया। वह अमरीका से २७ नवम्बर को विदा हो कर मांट्रियल पहुँचे जहाँ वह स्वामी विष्णुदेवानन्द से मिले। यहाँ उन्होंने ३० नवम्बर तथा १ दिसम्बर को दो सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिये।

स्वामी जी ने १ दिसम्बर १९६१ को नयी दुनिया (अमरीका) से प्रस्थान किया और अब वह गृहाभिमुख हुए। प्रत्यागमन के समय वह पैरिस में रुके तथा वहाँ से लगभग ५०० मील दूर स्थित लाउर्डेस के पवित्र देवायतन की यात्रा की। लाउर्डेस में एक चमत्कारक जलस्रोत है जिसमें

रोगमुक्ति के लिए गोता लगाने के लिए बहुत बड़ी संख्या में विकलांग व्यक्ति जाते हैं। यह देवायतन मरियम माता के अभ्यागमन से पुण्य तीर्थ बन गया है। उनके पवित्र अभ्यागमन की स्मृति में वहाँ माता मरियम की एक प्रतिमा है। स्वामी जी ने सुप्रसिद्ध जल में पुण्य स्नान किया और तत्पश्चात् जर्मनी को और बाद में स्विट्ज़रलैण्ड को प्रस्थान किया।

स्वामी जी १५ दिसम्बर को ज़्यूरिक से प्रस्थान कर असीसी की पवित्र भूमि की तीर्थयात्रा को गये जहाँ लगभग १८०० वर्ष पूर्व सन्त फ्रांसिस का जन्म हुआ था। जैसा कि इससे पूर्वतर बतलाया जा चुका है कि स्वामी जी अपने बालकपन से ही सन्त फ्रांसिस के जीवन से अत्यधिक प्रभावित थे और उनके अपने जीवन की तुलना इस महान् ईसाई सन्त के जीवन से युक्तियुक्त रूप से की जा सकती है। वस्तुत: पाश्चात्य देशों में कुछ श्रद्धालु जन इन्हें भारत का सन्त फ्रांसिस मानते हैं। उन्होंने इस महान् सन्त की जन्मभूमि के दर्शन करने को अपना एक पुण्य सद्भाग्य माना और उस पावन केन्द्र में अपने को पवित्रीभूत अनुभव किया। तत्पश्चात् वह पैड्रेपियो को एक बार पुन: अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए सैन गियोवन्नी रोटोण्डो गये।

उसके बाद स्वामी जी यरुशलेम तथा बेतलहम की पुण्य भूमि में गये जहाँ उन्होंने २५ दिसम्बर १९६१ को पवित्र ख्रीस्त-जन्मोत्सव मनाया तथा पाश्चात्य देशों के उनके बच्चों के साथ अपना नियत कार्य पूर्ण करने के लिए मुक्तिदाता प्रभु को धन्यवाद दिया।

स्वामी जी की पश्चिमी गोलार्ध की प्रथम यात्रा समाप्त हुई। वह यरुशलेम से केयरो गये और वहाँ से वायुयान द्वारा १९६१ के अन्तिम दिनों में भारत आये। वह ३० दिसम्बर को मुम्बई पहुँचे और अल्पकालिक

विश्राम के लिए कुछ समय के लिए दक्षिण भारत चले गये। वह २३ जनवरी १९६२ को आश्रम पहुँचे और सीधे श्री गुरुदेव के कुटीर में गये और उनके चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

उनका सम्पूर्ण परिभ्रमण पूजनीय गुरुदेव स्वामी शिवानन्द तथा उनके दिव्य उद्देश्य की सेवा के रूप में था। दो वर्ष से अधिक समय पूर्व उन्होंने विदा लेने के रूप में पवित्र चरणों को स्पर्श किया था। कार्य समाप्त होने पर वह पुनः उन्हीं पवित्र चरणों की शरण में वापस आ गये। उन्होंने जो-कुछ भी प्राप्त किया था, उन्होंने जो-कुछ भी सेवा की थी, उन्होंने जो-कुछ भी कार्य किया था, वह सब अब उन्होंने उन्हीं चरण-कमलों में विनम्रतापूर्वक समर्पित कर दिया।

दिव्य जीवन

''सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः

सम्पूर्ण गोपनीयों से भी अतिगोपनीय मेरे परम रहस्यमय वचन को फिर सुनो'' (गीता : १८/६४)।

स्वामी चिदानन्द जी का इतिवृत्त मानव-व्यक्तित्व के पूर्ण दिव्यीकरण का इतिवृत्त है। यह मौन सेवा तथा पूर्ण अनात्मशंसा का इतिवृत्त है। अतः हिमालय का यह अप्रतिम सन्त अपने वैयक्तिक अनुभव के गम्भीर प्रमाण तथा अपरोक्ष अन्तर्ज्ञानोपलब्ध बोध के आधार पर जिज्ञासु-जगत् में यह घोषित कर सका, ''योग मात्र निर्विकल्प-समाधि की अवस्था में ही नहीं है। यह जीवन के प्रत्येक क्षण में है।'' उनका जीवन निष्कलंक ईश्वरपरायणता से प्रतिक्षण प्रदीप्त रहता है।

स्वामी चिदानन्द जी का जीवन पवित्र सेवा की गाथा है। सेवा तथा आत्मत्याग उनके जीवन की प्रमुख विशिष्टताएँ रही हैं। उनके संस्कार ऐसे थे कि श्रेष्ठ आध्यात्मिक सद्गुण उनके लिए सहज संकल्प-व्यापार थे। इस भाँति इस निःसीम करुणापूर्ण सन्त ने अपनी किशोरावस्था में ही उन भाग्यहीन कुष्ठियों के संरक्षक पिता तथा चिकित्सक होने के भयजनक कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया जिन्हें उनके सभी सजातियों ने ठुकरा दिया था और जिनसे वे घृणा करते थे। औदार्य, पवित्रता तथा करुणा उनमें सहज रूप से आये। भौतिक समृद्धिमय जीवन के विचारों से वह कभी भी प्रलुब्ध नहीं हुए। उनका जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ तथा राजकुमारों की भाँति उनका पालन-पोषण हुआ; किन्तु धन-सम्पत्ति तथा सांसारिक

प्रतिष्ठा उनके लिए अर्थहीन थी। यौवनावस्था में भी वह इन्द्रियों के पाश से बहुत ऊपर थे। सेवा तथा आत्मत्याग ही उनके सुख-साधन थे। सन्तों की संगति ही उनकी एकमात्र लालसा थी। ध्यान उनकी एकमात्र ललक (वासना) थी। पूजा ही उनका एकमात्र आमोद था।

इस जन्मजात सिद्ध को अपने नवयौवन-काल में यह अनुभव हुआ कि वह संसाराग्नि में झुलस रहे हैं। अत: समुपयुक्त समय आते ही उन्होंने तत्काल अपना घरबार त्याग दिया। वह बुद्धपूर्णिमा के पुण्य दिवस को ऋषिकेश में पावनी गंगा के तट पर आनन्द कुटीर, शिवानन्द आश्रम में अपने गुरुदेव से मिले। उन्होंने गैरिक परिधान धारण कर लिया तथा पुरातन संन्यास-आश्रम से सम्बद्ध हो गये। एक दशक से अधिक समय तक वह उग्र सेवा तथा साधना में निमग्न रहे तथा एक ज्ञानी के रूप में विभासित हुए। इसके आगामी दशक में गुरुदेव के जीवनकाल में उन्होंने नयी दुनिया में योग तथा वेदान्त का सन्देश पहुँचाया। वहाँ से वापस आ कर वह स्वेच्छा से एक एकाकी परिव्राजक संन्यासी का जीवन-यापन करते हुए एकान्तवास में निमग्न हो गये। वह संन्यासाश्रम से भी उदासीन हो चले। वह भगवान् पर निर्भर रह कर ईश्वरीय चेतना की भूमिका में आनन्दपूर्वक निवास करते हुए सभी बन्धनों से मुक्त हो एक अवधूत की भाँति स्वच्छन्द विचरण करते थे।

ऐसी उच्च स्थिति में भगवदिच्छा उन्हें लोक-संग्रह की, उत्कृष्ट आध्यात्मिक सेवा की भूमिका में वापस लायी। गुरुदेव स्वामी शिवानन्द ने अपना भौतिक कलेवर त्याग दिया तथा वह परम सत्ता में विलीन हो गये। अत: गुरुदेव के दिव्य मिशन के नेतृत्व का कार्य उनके चुने हुए शिष्य के कन्धों पर पड़ा। इस भाँति संसार का त्याग करने वाला व्यक्ति आधुनिक जगत् में सर्वाधिक सक्रिय धार्मिक कार्यकर्ता बना।

स्वामी जी सभी समयों तथा सभी अवसरों पर अश्रान्त सेवा करते हैं। वह प्रभु की इस विश्व-रूप में अनथक सेवा करते हैं। वह अपने गुरुदेव के दिव्य मिशन के माध्यम से सेवा करते हैं। वह राममय जगत् में निवास करते हैं। राम उनके जीवन में क्योंकर आये, यह प्रत्येक जिज्ञासु के लिए एक शिक्षाप्रद पाठ है। वह उनके जीवन में उनकी बाल्यावस्था में कोदण्ड राम की मूर्ति के रूप में आये जिनकी वह पूजा करते तथा जिनमें अपनी पूर्ण सत्ता रखते थे। एक परवर्ती अवस्था में वह उनके पास हतभाग्य कुष्ठियों के रूप में आये। तत्पश्चात् एक ऐसा समय आया जब वह पापा रामदास के उत्प्रेरित शब्दों के रूप में उनके समक्ष प्रकट हुए। तदनन्तर रामकृष्ण परमहंस का जीवन अपनी ओर इंगित करते हुए एक आदर्श के रूप में उनके सम्मुख दिखायी पड़ा। सन्तों तथा रहस्यवादियों ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अन्त में भगवान् ने अपने सद्गुरु के रूप में उन्हें दर्शन दिया। शिवानन्द उनकी सत्ता में ही प्रवेश कर गये। वह गुरुभक्ति से आपूरित हो उठे। शिवानन्द उनमें वास करते थे और वह शिवानन्द में वास करते थे। दोनों मिल कर एक बन गये। स्वामी कृष्णानन्द जी के शब्दों में : ''उन्होंने (चिदानन्द ने) श्री गुरुदेव के उज्ज्वल दिव्यत्व को शत-प्रति-शत आत्मसात् कर लिया है। हमें उनमें गुरुदेव के सभी चमत्कारात्मक तथा आश्चर्यकारक गुण दृष्टिगोचर होते हैं।''

'सर्वं राममयं जगत्', 'सर्वं विष्णुमयं जगत्', 'वासुदेवः सर्वम्', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'हृह्वये उनके जीवन के सूत्र तथा जीवन में आने वाली सभी परिस्थितियों के नुसखे हैं। वह समग्र विश्व को ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं। यह संसार गुरु है। जीवन शिष्यत्व है। अतः व्यक्ति को अपना जीवन संसार की सेवा करने तथा स्वयं संसार से ज्ञान

ग्रहण करने के लिए यापन करना है। यह धर्म है जो व्यक्ति को मोक्ष तक पहुँचाता है। यही मानव के प्रति चिदानन्द के सन्देश का मूल-भाव है। वह इस सन्देश को अपने व्यक्तिगत उदाहरण तथा गूँजने वाले आदेशों के माध्यम से सम्प्रेषित करते हैं। अत: उनमें वर्तमान गुरुपन की भावना ने विनम्र शिष्यत्व के जीवन को वरण किया है। वह अपने को सदा गुरुदेव का सेवक मात्र मानते हैं। वह अपने शिष्यों को गुरुदेव का शिष्य मानते हैं। इतना ही क्यों, वह उन्हें साक्षात् नारायण समझते हैं। वह आधुनिक काल के सन्तों के चूड़ामणि हैं, किन्तु वह सबके सामने नतमस्तक होते हैं। वह न केवल अपने गुरुजनों को अपितु अधमाधम लोगों को भी साष्टांग प्रणाम करते हैं।

वह इस पार्थिव जगत् के सभी प्राणियों की अक्षय करुणा के साथ सेवा करते तथा उनसे प्रेम करते हैं। जब वह आध्यात्मिक उपलब्धियों की पराकाष्ठा पर पहुँच गये तो निरर्थक बातों में करुणाजनक रूप से उलझे हुए अपने सजातियों के दयनीय दृश्य देख कर उनका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने सभी प्रकार की असुविधाओं तथा कठिनाइयों पर ध्यान न दे कर उन लोगों को मुक्त कराने के कार्य के लिए अपने को समर्पित कर दिया। उन्हें ज्ञात था कि लोग अज्ञानतावश भूलें करते हैं। अत: उन्होंने उन्हें न तो तुच्छ समझा और न उनकी भर्त्सना ही की। वरन् उनको ऊपर उठाने के लिए वे स्वयं प्रेम से नीचे झुक गये। उनका प्रेम नि:सीम है जो पशुओं, पक्षियों तथा कीड़ों तक को अपने क्रोड़ में लेने के लिए फैला रहता है।

स्वामी जी सनातन-धर्म की किरणें प्रसारित करने वाले एक शुद्ध क्रकच (प्रिज़्म) हैं। नितान्त निष्कल्मष साधु व्यक्ति तथा साक्षात्कार-प्राप्त आत्मा होने से वह अमित आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न हैं। उनकी

उपस्थिति ही उन्नयनकारी अनुभव है। वह संघर्षरत जिज्ञासुओं के संशयों का निराकरण करती तथा उनमें नवीन आध्यात्मिक ओज अनुप्राणित करती है। उनके शिष्य अनेक हैं और ऐसे लोग तो असंख्य हैं जो यद्यपि उनसे दीक्षित नहीं हैं पर उन्हें अपना सद्गुरु मानते हैं। किन्तु यह प्रेम तथा करुणा का महान् स्वामी उन सबके मध्य में एक सामान्य साधक की भाँति विचरण करता है। वह जन्मजात सिद्ध हैं, किन्तु जिज्ञासु की भाँति आचरण करते रहते हैं।

असाधारण ऊँचाइयों पर आरोहण करने वाले ईश-मानवों ने मानव-मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। बुद्ध अपने पीछे 'चार आर्य सत्य' तथा 'अष्टांगिक मार्ग' छोड़ गये। शंकराचार्य ने हमें परम सत्ता के पाठ का उत्तरदान किया। चैतन्य महाप्रभु ने हमें नाम-संकीर्तन का आनन्दातिरेक प्रदान किया। शिवानन्द ने मानवता की सेवा, भक्ति, ध्यान तथा प्रबोध-रूप साधन-चतुष्टय प्रदान किया। इसी अविच्छिन्न परम्परा में, सृष्टिकर्ता की खोज किसी अज्ञात रहस्यमय लोक में न कर स्वयं सृष्टि में ही खोजने का उपदेश चिदानन्द हमें अपने भाव तथा कर्म द्वारा देते हैं। उन्होंने मानव को केन्द्र-योग, प्रकाशपूर्ण चैतन्य-योग, प्राणियों की सेवा तथा भगवदाराधन-योग का उत्तरदान किया है। वह नित्य निरन्तर पुजारीह्वह्वभगवान् के सतत आराधक हैं। वह अपने सजातियों को दिव्य जीवन यापन करने के लिए भावोद्दीपक उपदेश देते हैं। वह अत्यधिक उत्कण्ठा तथा गम्भीर भाव से परामर्श देते हैं:

भगवान् के विराट् स्वरूप को नमस्कार करने के लिए प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में जग जायें। दिन का कार्य आरम्भ करने से पूर्व उन-(प्रभु) के समक्ष श्रद्धा से नतमस्तक हों। शान्त चित्त तथा सुख-शान्ति तथा सन्तोष से पूर्ण रह कर दिनभर व्यवहार करें। इस संसार में कुछ भी गर्हित नहीं है। अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लायें। दुर्भाव त्याग दें। शत्रु को क्षमा कर दें।

चिन्ता करना बन्द कर दें तथा अपने-आप मन्द-मन्द मुस्करायें। अनुभव करें कि यह समग्र संसार ईश्वर की अभिव्यक्ति है तथा आप इन सभी नामरूपों में उस ईश्वर की ही सेवा कर रहे हैं। जीवन को योग में रूपान्तरित कर दें। सदाचारी तथा परोपकारी बनने का प्रयास करें। ईश्वर सरल लोगों के साथ चलता है, दु:खियों के प्रति अपने को उद्घाटित करता है, भद्र लोगों को विवेक प्रदान करता है तथा अहंकारियों से अपनी कृपा अलग रखता है। अत: अहन्ता त्यागें, सद्गुणों का अर्जन करें तथा मुक्त बनें। मन को सदा शान्त तथा निरुद्विग्न रखें। मन की बाधाओं पर विजय पाने का यही रहस्य है। बोलने से पूर्व अपने सभी शब्दों पर भली-भाँति विचार करें। इने-गिने शब्द ही बोलें। यह शक्ति को सुरक्षित रखेगा तथा मानसिक शान्ति तथा आन्तरिक शक्ति प्रदान करेगा। अपना प्रेम व्यक्त करें। इसे पुन: व्यक्त करें। इसे और भी पुन: व्यक्त करें। इसे एक बार पुन: और व्यक्त करें। मन को कभी भी पूर्णतया बहिर्गामी न होने दें। अपने मन के विजेता, अपनी वासनाओं के दमनकारी तथा अपने भाग्य के स्वामी बनें; क्योंकि आप ही स्वामी हैं।

गुरुदेव शिवानन्द आपको जगाने के लिए आये। भूल जायें कि आप यह नश्वर शरीर हैं। स्मरण रखें कि आप शुद्ध चेतना हैं। और अधिक निद्रा में न पड़े रहें। तृणवत् विनम्र बनें। सेवा करें। प्रेम करें। दान दें। शुद्ध बनें। ध्यान करें। आत्मसाक्षात्कार करें। भले बनें। भला करें। दयालु बनें। संवेदनशील बनें। दिव्यता आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस दिव्यता को नियमित साधना द्वारा प्रकट करें। **''ईशावास्यमिदं सर्वम्।''** यह अखिल ब्रह्माण्ड ईश्वर से व्याप्त है। अत: मानव-जाति की सेवा करें तथा दिव्यता की खोज करें।

स्वामी चिदानन्द जी के सन्देश के ये स्वर हैं। महान् गुरुदेव की भाँति वह समान रूप से बल देते हैं : ''केवल विश्वास ही पर्याप्त नहीं, वरन् वैसा बनिए तथा उसे जीवन में उतारिए।''

मानव-जीवन का महत् उद्देश्य भगवत्साक्षात्कार है। वृक्ष, पशु, पक्षी तथा कीड़े जन्म लेते तथा मर जाते हैं। उनका विकास नहीं होता है। उन्हें उनके स्रष्टा ने सद् तथा असद् में विवेक करने की चेतना से सम्पन्न नहीं किया है; मानव-जीवन ईश्वर की अमूल्य देन है। मानव-जीवन का पथ 'क्षुरस्यधारा' का पथ है। इन्द्रियों ने हमें अन्धा बना दिया है और हमारी चेतना का अपहरण कर लिया है। हमारे अनेक अन्धकूप हैं। जीवन के इस महान् तथा दुर्गम पथ में हमारी सँभाल करने तथा हमें सम्बल प्रदान करने के लिए यदा-कदा ईश्वर के सन्देशवाहक, हमारे मित्र तथा पथप्रदर्शक के रूप में प्रकट होते हैं। वह गुरु है। वह समग्र मानव-जाति का होता है। वह आपके अन्तर्तम प्रकोष्ठ को खटखटाता तथा आपसे सानुकम्पा अनुरोध करता है : ''हे भाग्यशाली मित्र! आप अज्ञान की गहन निद्रा से कब जागेंगे?...आइए! आइए! अब जग जाइए। इस स्वप्न को भंग कीजिए। अपने जन्मसिद्ध अधिकार की माँग कीजिए तथा अपने सत्स्वरूप को पहचानिए। अभी तथा यहीं पर अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कीजिए तथा दिव्य आनन्द, शान्ति तथा ज्ञान के अनुभव में प्रवेश कीजिए जो कि आपका शाश्वत स्वरूप है।''

गुरुदेव के दिव्य दूत स्वामी चिदानन्द जी का मानव-जाति को यह दिव्य आह्वान है। ईश्वर करे कि हम इस रोमांचकारी उद्बोधन पर ध्यान दें तथा गीता के अर्जुन की भाँति कहें : ''करिष्ये वचनं तव'' मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। ॐ तत्सत्!